पेरिस
मई १८, २००८

संदेश संख्या – १४५

एक और शून्य

एक के आगे बारम्बार शून्य रखने पर जिस तरह एक का मान तेजी से बढ़ता हुआ अनन्त तक पहुँच जाता है, उसी तरह विभेदकारी चित्त ''मैं'' के अवयवों को खाली अर्थात् शून्य कर देने पर विलक्षण मानव शरीर अनन्त चैतन्य अर्थात् भगवत्ता की समझदारी को उपलब्ध हो जाता है ।

इसीलिए सर्वव्यापी चैतन्य (कृष्ण) भगवद्गीता में कहते हैं – अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर (८:४)–''हे अर्जुन ! यहाँ इस शरीर में यज्ञ का स्वामी मैं स्वयं हूँ ।'' जिस शरीर में चैतन्य (दिव्यता) चमकता है उसमें चित्तवृत्ति ''मैं'' और उसके विभाजनों का सतत् अर्पण होता रहता है । दुर्भाग्यवश, जिस शरीर में यह प्रक्रिया घटित हो रही है, उसे कोई सुनना नहीं चाहता, यद्यपि वह सुननेवालों की आदतन प्रतिरोध से उत्पन्न बाधाओं के बावजूद बिना किसी लोभ या भय के सभी कुछ का त्याग करता हुआ, केवल बोलता जाता है । श्रवण मानव चित्तवृत्ति के विभाजन रूपी इंधन में समझदारी रूपी अग्नि प्रज्वलित कर मन एवं अहंकार की सम्पूर्ण अज्ञानता को जलाकर भस्मीभूत कर सकता है । तभी तुम (जीवन) देख सकते हो कि क्या नहीं करना है क्योंकि तुम (मन) नहीं देख सकते कि क्या करना है । मन के मार्ग को पूर्ण रूपेण छोड़ने पर ही दूसरा मार्ग शुरु होता है जो कि पहले से निर्मित मानचित्र पर नहीं दिखाया जा सकता । पुरोहितों द्वारा बताये जाने वाले सभी मानचित्रों के मार्ग गलत है । उन्हें पूरी तरह त्याग दो ।

जीवन कभी जन्म नहीं लेता, यह कभी मरता भी नहीं । तुम्हारे शरीर के जन्म के साथ ही जीवन से अलगाव रूपी ''मैं'' अर्थात् मृत्यु का जन्म हो जाता है ।

इच्छा द्वेष समुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ।।
(भगवद्गीता ७:२७)

हे अर्जुन ! इच्छा और द्वेष के उत्पन्न होने से तथा परस्पर विपरीतों के मोह से, सभी जीव जन्म के साथ ही जीवन से अलगाव रूपी भ्रांति में फँस जाते हैं। और तुम्हारे शरीर की मृत्यु के साथ ही यह ''मैं'' अर्थात् मृत्यु भी मर जाती है ताकि वह पुनः जीवन को उपलब्ध हो सके । पुनर्जन्म का अर्थ जीवन को पुनः प्राप्त करना है । यह भ्रांति ''मैं'' को उसके छवियों, विचारों, विशेषताओं, चालाकियों, चालबाजियों, ''सत्य'', लालसा, दुविधा, डर, लोभ, ईर्ष्या, अवसाद आदि के संग्रह के साथ तथा परम्परा पोषित विश्वास–पद्धतियों की मगज–धुलाई के कारण स्वयं को सतत् बनाए रखने की प्रबल इच्छा के साथ पुनः प्राप्त करना नहीं है । चैतन्य की जागृति के साथ–साथ ऐसे मानसिक प्रदूषणों का भी पुनर्जन्म हो, ऐसी इच्छा तुम कैसे कर सकते हो ? वस्तुतः जब तुम (जीवन) मिथ्या ''त्वं–भाव'' (विभेदकारी मन) के प्रति जग जाते हो तब तुम (मन) जीवन के रूप में जन्म लेने हेतु उसी समय मर जाते हो । मिथ्या ''मैं'' पुनः जन्म लेगा या ईसा मसीह द्वारा उसका उद्धार किया जायेगा, इस भ्रांति से मुक्ति के लिए तुम्हें शारीरिक मृत्यु तक प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं है । चैतन्य में पुनर्जन्म के लिए ''मैं'' का इस तरह मरना ही ध्यान है। यही जीने की वास्तविक कला है न कि ''जीने की कला (Art of Living)'' के नाम तले माफिया द्वारा प्रचारित मूर्खतापूर्ण गतिविधियाँ । यह ध्यान ही प्रेम है, यही ब्रह्म है, यही जीवन है ।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म
नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।
(भगवदगीता ३:१५)

''मैं'' के सतत् अपर्ण रूपी यज्ञ में सर्वव्यापी चैतन्य शाश्वत रूप से पाये जाते हैं ।

इस यज्ञ में, चेतना में अद्वितीय शून्यता होती है । यह शून्यता ही सृष्टि है, प्रेम है, पूर्ण ऊर्जा है, जीवन है, अज्ञेय है ।

।। जय यज्ञ ।।